आध्यात्म, मनोविज्ञान और नैतिकता

डॉ. श्रुति होरा
एसोसिएट प्रोफेसर, पी.जी.जी.सी.जी, सैक्टर–11, चण्डीगढ़

आजकल नैतिक अनुशासनों को आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में दमन और अस्वभाविक नियन्त्रण से बहुत अधिक जोड़ा जा रहा है। प्राचीन हिन्दू ऋषि इन्द्रियों का उच्चतर दिशा प्रदान करने में विश्वास रखते थे। हम प्रमात्मा की स्तुति और अराधना करें तथा स्थिर और बलवान देह तथा इन्द्रियों द्वारा निर्धारित जीवन का उपभोग करें।

व्यक्ति तब शान्ति और समरसता का अनुभव करता है, जब वह अपनी इन्द्रियों और मन का स्वामी होता है, जब वह आध्यात्मिक जीवन को द्वन्द रहित और स्वाभाविक रूप से यापन करता है। मानसिक शुद्धि की प्रक्रिया साधना की भाषा में परगेशन और मनोवैज्ञानिक भाषा में उदात्तीकरण कहलाती है। यह वासनाओं या मौलिक सहिजावृतियों को उच्चतर दिशा प्रदान करने की प्रक्रिया है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने एक प्रणाली खोज निकाली है, जिसके बारे में भारत में पुरातन आध्यात्म–आचार्यगण और अधिक जानते थे। आधुनिक मनोविश्लेषण की प्रणालियों को मुख्य उद्देश्य रोगी की मानसिक समस्याओं के मूल और मन के गहरे पैठे कारण का चेतन के स्तर पर लाना या उसका बोध कराना है। कुछ निर्लज मनोविज्ञानिक रोगियों को अपनी स्थूल वासनाओं की उन्मुक्त रूप से पूर्ति करने की सलाह देते हैं।

लेकिन डॉ. हेडफील्ड नामक एक प्रमुख मनोविज्ञ कहते हैं, उपचार एवं रोग निवृति की दृष्टि से अपनी स्वाभाविक प्रवृतियों को अभिव्यक्त करने की सलाह मुर्खतापूर्ण है। आजकल मनोवि''लेषण की जिस पद्धति का व्यापक व्यवहार हो रहा है, उसमें रोगी से कहा जाता है कि वह 1. उसे चंचल कर रही इच्छा को नई दृष्टि से देखे तथा उसे पूर्णतया या आंशिक रूप से भय और घृणा मुक्त हो स्वीकार करें। 2. समस्याओं का सीधा सामना करें एवं अत्याधिक ग्लानि के बिना उसे स्वीकार कर दें। 3. उसे उच्चतर मार्ग में उच्चतर लक्ष्य की ओर परिचालित करे।

डॉ. एडलर सदा समाज के लिए उपयोगी एक स्वास्थ्य जीवन पद्धति का अनुसरण करने की सलाह देते हैं। हिन्दू आध्यात्म आचार्य भी हमारी वासनाओं को उच्चतर दिशा प्रदान करने की सलाह देते हैं। श्री राम कृष्ण कहते है, श्छः रिपुओं को ईश्वर की ओर मोड़ दो। आत्मा के साथ रमण करने की कामना हो। जो ईश्वर की राह पर बाधा पहुँचाते हैं उन पर क्रोध हो। उसे ही पाने के लिए लोभ हो। यही ममता है तो उसी के लिए हो। जैसे मेरे 'राम', मेरे कृष्ण। यदि अंहकार करना है तो यह सोच कर अंहकार करो कि तुम भगवान के दास, भगवान की संतान हो।

डॉ एडलर का यह कथन कितना सत्य है अपने संबंध में अपनी मान्यता परिवर्तित करके हम अपने को भी बदल सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि अपने को, सभी को, उसके वास्तविक स्वरूप की शिक्षा दो। शक्ति प्राप्त होगी, अच्छाई आएगी, पवित्रता आएगी, जो कुछ

महान है, सर्वश्रेष्ठ है वह प्राप्त होगा। हिन्दू आचार्य इस आदर्श के तर्क संगत, अन्तिम निर्णय तक, सामान्य मनोविज्ञान के परे तक पहुँचता है।

हमारी वर्तमान मानसिकता की अवस्था में देह और मन परस्पर बहुत अधिक संबंधित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अतः हमे दोनों का ध्यान रखना चाहिए। यदि हम बुद्ध की गाथा याद करें तो याद हो आता है कि बुद्ध महल के सुखों से ऊब गए, घर त्याग कर, कठोर तपस्या की। एक दिन जब वह खड़े होने लगे तो अचेत होकर गिर पड़े, सचेज होने पर उन्होंने एक मधुर गीत सुना–

अधिक तना तार टूट जाता है, संगीत नहीं उभरता
अत्याधिक ढीला तार रहता है, संगीत मर जाता
सितार को साधो न अधिक ढिला न अधिक तना

सुजाता नामक एक ग्रामीण महिला के इन शब्दों से बुद्ध गहरे ध्यान में डूब गए और निर्वाण प्राप्त किया। अत्याधिक भोगशक्ति और आत्म–निग्रह दोनों अत्याज्य है। बुद्ध ने मात्र तपस्या और भोगशक्ति से रहित सम्यक भावना, सम्यक आजीविका और सम्यक ध्यान के मध्यम मार्ग का आविष्कार किया। बुद्ध से सदियों पूर्व श्री कृष्ण ने यही संदेश दिया था। युक्त–आहार, युक्त–विहार, युक्त–चेष्ठा, युक्त निद्रा और जागरण वाले योगी के लिए योग दुख ना"ाक होता है। इसके पूर्व वैदिक ऋषियों ने कहा था कि अपने स्वभाव के अनुरूप आहार रक्षक होता है, हानि नहीं पहुँचाता, उससे अधिक मात्रा हानिकारक होती है और कम मात्रा रक्षा नहीं करती। मुख से खाया जाने वाला आहार सम और शुद्ध होना चाहिए, अन्य इन्द्रियों द्वारा गृहित आहार भी शुद्ध होना चाहिए तथा नैतिक जीवन यापन भी किया जाना चाहिए।

वासनाएं हमें एकाएक नहीं छोड़ती। हम भले ही संयम का अभ्यास करें। इच्छित वस्तुओं से स्वयं को अलग रखें, लेकिन इच्छा सुक्ष्म रूप में बनी रहती हैं। यह इच्छा आध्यात्म चेतना के उदय होने पर ही नष्ट होगी। अतः हमें इस आध्यात्म, प्रमात्म चेतना को कुछ मात्रा तक जगाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। हम अपनी शक्ति जागृत करते हैं लेकिन उसका सदुपयोग करना नहीं जानते तो यह शक्ति व्यर्थ कार्यों में नष्ट हो जाती है। आध्यात्म जीवन का यह महान दुर्भाग्य है। हमें इस शक्ति को उच्चतर दिशा प्रदान करना आना चाहिए। अन्यथा सह संचित शक्ति हमारी वासनाओं और इन्द्रियों को उत्तेजित कर सकती है और हमारी देह तथा मन को ध्वंस कर देगी। एकाग्रता और ध्यान के साथ खिलवाड़ करना खतरनाक है लेकिन यदि उचित प्रशिक्षण प्राप्त हो, आवश्यक योगयता हो तो ध्यान एवं एकाग्रता का जीवन यापन करना बडा आनन्द दायक है। वास्तव में आध्यात्मिक जीवन का सफलतापूर्वक आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने के लिए बुद्धि और अंहकार के दोषों को भी दूर करना चाहिए। सतत सही मार्ग का अनुसरण करने तथा मन को बलवान बनाने से इच्छा शक्ति बलवती होती है और आध्यात्मिक जीवन की सफलता के लिए एक सबल इच्छा शक्ति की निश्चय की आवश्यकता है। प्रलोभनों के आक्रमण के समय अचेतन मन में छिपी वासनाओं के उचित होकर हमें प्रलोभित करते समय सबल इच्छा शक्ति की आवयकता पड़ती है जिससे हम प्रलोभनों से ऊपर उठकर हम आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करने में समर्थ हो सकते हैं।

आध्यात्मिक जीवन में अंह–केन्द्रित नैतिक और आध्यात्मिक साधना मात्र ही प्रयाप्त नहीं है। अतः योग और वेदान्त दोनों के आचार्यों का कथन है। साधना के साथ अपने कर्मों के फल ईश्वर की समर्पित करने का प्रयत्न करो। योगी ईश्वर को गुरूओं का परम गुरू मानता है। पाश्चात्य देशों में ईश्वर के परम गुरू रूप को अधिक महत्व नहीं दिया जाता लेकिन हम भारत में उन्हें महत्व देते हैं। माता पिता हमें मौलिक जीवन प्रदान करते हैं लेकिन आध्यात्मिक गुरू आत्म जगत में हमारे जन्म में सहायक होते हैं तथा जन्म और मृत्यु, दुःख और शोक से पार जाने में सहायता करते हैं तथा इस सत्य से भी अवगत कराते है कि हम प्रमात्मा के अभिन्न अंग तथा आत्माएं है। जब हम यह जान जाते हैं तो हम अपने आध्यात्मिक जीवन का विनम्र शुभारम्भ कर सकते है तथा यह अनुभव करने लगते है कि देह हमारा रथ है, इन्द्रियां घोड़े हैं, मन लगाम है और बुद्धि हमारा सारथी है। हम इस रथ पर पूर्ण नियन्त्रण रखना सीखें, महापुरूषों के पद चिन्हों पर चले, मन को सयम में रखे, इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखे और आध्यात्मिक पथ पर शनै–शनै अनुगमन करें तो हम सत्र, चित्र और आनन्द की प्राप्ति कर सकते हैं।

नैतिक जीवन की परिणिती आध्यात्मिक जीवन में–हिन्दू धर्म के अनुसार प्रत्येक मानव का देह मन युक्त व्यक्तित्व तथा जीवन तीन गुणों द्वारा प्रचलित होता है, जो सदा भिन्न रहते है। इससे तम्स निष्क्रियता का रजस क्रियाशीलता का तथा सत्वष्तान का तत्व है। मानव का स्वभाव इन गुणों में से किसी एक के या अन्य का आधिक्य पर निर्भर करता है। इन गुणों का संतुलन जीवन की मुख्य समस्या है। यह गुण छत की सीढ़ी पर जाने के समान है, आलसी व्यक्ति को ऊपर चढ़ कर कर्मठ होना है। कर्मठ को पवित होना है। सत्व की वृद्धि होने पर मन शुद्ध और स्पष्ट हो जाता है। सत्व सत्य तक जाने की सीढ़ी का सब से ऊपरी सोपान है लेकिन वह सत्य नहीं है। हमारी पवित्रता से हमें भगवत–साक्षात्कार होना चाहिए। भगवद् प्राप्ति का अर्थ है सभी गुणों का अतिक्रमण करना। तमोगुण से विनाश होता है, रजोगुण से मनुष्य संसार में आबद्ध होता है, अनेकानेक कार्यों में जकड़ जाता है। रजोगुण ईश्वर को भुला देता है। सत्वगुण ही केवल ईश्वर तक पहुँचाने का रास्ता बताता है। दया धर्म भक्ति यह सब सत्वगुण से उत्पन्न होते हैं। सत्वगुण मानों अन्तिम सीढ़ी है। इसके बाद ही है हठत। मनुष्य का धाम है परबह्म। त्रिगुणतीत न होने पर ब्रह्मज्ञान नहीं होता।

केवल नैतिकता व्यक्ति को आध्यात्मिक नहीं बना सकती। मात्र नैतिकता व्यक्ति की आध्यात्मिकता का मादण्ड कभी नही हो सकती। नैतिकता को जीवन का सार–सर्वस्व मानना–सामान्यत– मोटेस्टेण्टिज्म कहलाने वाले मत की यह बड़ी त्रुटि है। नैतिकता आवश्यक है, लेकिन मात्र नैतिकता, आध्यात्मिक होने का दावा नहीं कर सकती, जो नैतिक आदर्शों के स्तर से बहुत ऊपर है।

वेदान्ती कहता है निस्वार्थ कर्म करना तथा नैतिक जीवन यापन करना पर्याप्त नहीं है। अपने कर्तव्यों का सख्ताई के साथ पालन करना ही पर्याप्त नहीं है, कुछ और भी आवश्यक है। तुम्हें उच्चतम दिव्य ज्ञान प्राप्त कर जीवन के चरम उद्देश्य को उपलब्ध करना चाहिए। ज्ञान के लिए चित शुद्वि तथा प्रज्ञा बहुत आवश्यक है। और इसके बिना कोइ भी उच्चतम ज्ञान प्राप्त नही कर सकते नैतिक जीवन अशुभ विचारों और संस्कारों के नाश या उदात्तीकरण पर बल देता है। लेकिन आध्यात्मिक जीवन का अग्रह शुभ विचारों और वासनाओं के भी नाश तथ

अतिक्रमण पर है। भावनाए व्यक्ति को मानसिक और भौतिक स्वर पर आबद्ध करती है। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ इन दोनों के पार जाना है। इसलिए साधक को तथा कथिक परम्परागत शुभ आचरण के भी ऊपर उठने का निर्देश दिया जाता है। यह सदा याद रखना चाहिए कि शुभ भावनाओं को अशुभ भावना में परिवर्तित होने में देर नहीं लगती। मन को शान्त और शुद्ध करने का सब से आसान उपाय एकान्तवास, संयम और ध्यान धारणा है। जितना हम शुभ चिन्तन में ध्यान लगाएगें उतना ही हमारा आध्यात्मिक विकास होगा। जिस प्रकार अच्छा आहार पाने पर गाय अधिक दूध देती है। इसी तरह जब मन को आध्यात्मिक आहार दिया जाता है तो वह अधिक शान्ति प्रदान करता है। ध्यान, धारणा, प्रार्थना, जप, आध्यात्मिक आहार है। मन पर यदि हम नजर रखेंगें तो मन इसके बदले हम पर नजर रखेंगें तथा शान्ति और आन्नद दूसरों में बांटने के लिए लालायित रहता है।

मनोविज्ञान हमें सीखाता है कि अवचेतन मन की गहराईयों में पड़े सुक्ष्म संस्कारों प्रवृतियों इच्छाओं और वासनाओं का हमारे चेतन जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वे सूक्ष्म शरीर मनोमय भावनात्मक शरीर में रहते हैं और स्थूल शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। अवचेतन मन में नियन्त्रण का अर्थ सुक्ष्म भावनात्मक शक्तियों, इच्छाओं और वासनाओं को निम्न स्तरों पर अभिव्यक्त नहीं होने देता है। उन्हें उच्चतर स्तर पर अभिव्यक्त करना चाहिए। उन्हें शुद्ध तथा उनका उदातीकरण करके समाज और व्यक्ति के कल्याण के लिए उनका उपयोग किया जाना चाहिए।

अज्ञान से अहंकार और अंहकार से राग द्वेष उत्पन्न होते हैं। अज्ञान और अहंकार के कारण ही हम अपने अध्यात्मिक स्वरूप को भूल जाते है। आत्मसाक्षातकार के कारण ही हमे हमारे मुक्त स्वरूप की पुनः उपलब्धि हो सकती है। आध्यात्मिक जीवन का यही खुला रहस्य है। बहुत से सत्यान्वेषी चिकित्सक और मनोविशेषज्ञ हमें यह तथ्य बता रहे है कि अज्ञान से उत्पन्न गलत दृष्टिकोण तथा भावनाओं के कारण बहुत से शारीरिक व मानसिक रोग होते हैं जिन्हें बहुत हद तक रोका या निवारित किया जा सकता है क्योंकि हमारे ब्राह्य आचरण के बदले हमारे विचारों और भावनाओं का अधिक महत्व है।

एक संसारिक व्यक्ति भी बदल सकता है यदि वह अपनी संसारिकता तथा मन में बनी समस्त ग्रंथियों को त्यागने के लिए तैयार हो अन्यथा नहीं। आध्यात्मिक शुद्धिकरण के पहले नैतिक शुद्धिकरण होना चाहिए। जैसे कि एक कहावत है 'जब तक सांस तब तक आस'। हम में से प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिए आशा है जो आन्तरिक रूप से श्रेष्ठ होना चाहता है। भगवद् गीता में श्री कृष्ण सभी को आशा दिलाते हुए कहते है, ''यदि तुम बहुत बड़े दुराचारी भी होओ, तो भी ज्ञान नौका सभी पापों को पार करके अशुभ से उत्तीर्ण हो सकते हो। आत्म–ज्ञान एक धधकती हुई ज्वाला के समान है जो समस्त बुराईयों को भस्म करके आत्मा के ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है जो आत्मा सभी के हृदय में विद्यमान है।

आध्यात्मिक जीवन में सार्वभौमिक गतिविधियां होती है। हमारी इच्छा से भी महान एक इच्छा है, जो आध्यात्मिक मनोवृति वाले लोगों को एक दूसरे के निकट ले जाती है। आध्यात्मिक जीवन में भी मांग और पूर्ति का नियम लागू होता है। मार्ग में सदा उतार–चढाव आते हैं। चिन्तन के विभिन्न उच्च और निम्न स्तर होते हैं। भगवद् कृपा हमें उच्च आध्यात्मिक प्रवाह से

संयुक्त करती है। उस प्रवाह में स्वयं को फैंक दो, तब तुम प्रगति करोगे। प्रयत्न करने पर तुम आ''चर्यजनक प्रगति करोगे। हमारी समस्या यह है कि हम कर्म करना नहीं जानते। सही मनोभाव से किया गया सही कार्य हमारा शरीरिक, बौधिक, व आध्यात्मिक विकास करता है। अपने आप में लक्ष्य नहीं बनने देना चाहिए। भगवद् उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही कर्म करना चाहिए। यही भगवान की सच्ची उपासना हे। प्रमात्मा के साथ तादात्म्य बनाए रखना एक नया घटक जोड़ देते है जो हमारे कर्म को आध्यात्मिक साधना में परिणित कर देता है तथा जिस से हमें आन्तरिक स्ववतन्त्रता तथा प्रभुत्व प्राप्त करती है। तब हम जीवन की कठिनाईयों का साहस पूर्वक सामना करने तथा उन पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हैं।

आध्यात्मिकता की हमें कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। पूर्ण नैतिक जीवन और तीव्र आध्यात्मिक साधना के द्वारा राष्ट्र के महान आध्यात्मिक भण्डार की निरन्तर क्षतिपूर्ति करते रहना चाहिए। असंख्य ऋषियों, सन्तों और महात्माओं की धरोहर को बिखेरकर नष्ट नहीं होने देना चाहिए। प्रत्येक मानव को इस सर्वजनीन आध्यात्मिक परिवेश में अपना योगदान करना चाहिए। सभी विचारवान भारतीयों का यह कर्तव्य है।